|| श्रीहरि: ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

2/2 (श्लोक 6-20), शनिवार, 16 दिसंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/Xw5dt0todes

भगवान के धाम का वर्णन

दीप प्रज्वलन, गुरु वन्दना एवं श्री कृष्ण जी के चरणों में वन्दन करते हुए, आज का विवेचन सत्र आरम्भ हुआ। भगवान की अतिशय मङ्गल कृपा से हमारे जीवन का ऐसा भाग्योदय हुआ है कि हम लोग अपने इस मानव जीवन को सफल करने के लिए, इस जीवन को सार्थक करने के लिए, इस जीवन का कल्याण करने के लिए, श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ने में, समझने में, सीखने में, आत्मसात् करने में और अपने जीवन में लाने के लिए, प्रयत्न करने लगे हैं। पता नहीं, हमारे इस जन्म के पुण्य हैं, ऐसे सुकर्म हैं, हमारे पूर्वजों के कोई सुकृत हैं, हमारे पूर्वजों के कोई पुण्य हैं या किसी जन्म में किसी सन्त महापुरुष की कृपा दृष्टि हम पर पड़ गई है। इसी कारण से हम श्रीमद्भगवद्गीता में लग गए हैं। भगवद्गीता में लगना ही भगवान की कृपा का प्रसाद है। बारम्बार, बड़ी विनम्रता पूर्वक निवेदन करता हूँ कि हमने इस गीता कक्षा को नहीं चुना है, बल्कि हम गीता जी के द्वारा चुने गए हैं।

पन्द्रहवें अध्याय का विवेचन हम देखते हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण और ज्ञान योग अध्याय है। इसे हम कुछ कहानियों के माध्यम से सरलता पूर्वक समझ सकते हैं। शुकदेव मुनि और राजा जनक के कथानक के माध्यम से हमने देखा, इस मानव जीवन में कैसे सांसारिक व्यवहार करते हुए, भगवान पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखी जा सकती है।

न रूपमस्येह, तथोपलभ्यते नान्तो न चार्दिन च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन, छित्त्वा ।। 3।।

भगवान कहते हैं, इसका सीधा तात्पर्य है कि संसार का सब व्यवहार करो। लेकिन उससे असङ्ग हो जाओ। उसमें आसक्ति का त्याग कर दो। वस्तु का, पदार्थ का, व्यक्ति का, परिस्थिति का त्याग करने की बात भगवान नहीं कहते हैं। गीता के प्रश्न, भगवा पहनकर संन्यासी हो जाओ। यह बात पसन्द नहीं करते हैं। बारहवें अध्याय में भगवान कहते हैं कि तुम जहाँ हो, जैसे हो, जिस भूमिका में हो, उस भूमिका का निर्वहन करो; लेकिन अपने मन को मुझ में लगा कर रखो। अगले श्लोक में भगवान ने अपना एड्रेस बताया हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण श्लोक है। इसे देखकर मुझे अपना बचपन याद आता है। हम बचपन में ऋषिकेश जाते थे। वहाँ परम श्रद्धेय स्वामी रामदास महाराज जी के दिव्य प्रवचन हुआ करते थे। मैं और मेरे मित्र रोज शर्त लगाकर सत्सङ्ग में जाते थे कि आज **ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:** का श्लोक या **अविनाशी** चौपाई आएगी। अच्छी बात थी कि हम में से एक जीत जाता था, क्योंकि स्वामी जी उनमें से एक तो रोज ले लेते थे। इतने विरक्त महापुरुष भी जिस श्लोक का निरन्तर चिन्तन करते होंगे! वह श्लोक कैसा होगा? भगवान ने बहुत महत्वपूर्ण घोषणा यहाँ पर की है। हम कौन हैं? यह प्रश्न मनुष्य जाति में सदियों का प्रश्न है। भगवान उसका उत्तर देते हैं। पाँचवें श्लोक में भगवान ने कहा-

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।। 5।।

इस प्रकार का योगी होता है, जो कामना और आसक्ति से रहित होकर मुझको प्राप्त होता है। फिर भगवान उसका एड्रेस बताते हैं।

15.6

न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम।।6।।

उस (परमपद) को न सूर्य, न चन्द्र (और) न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है (और) (जिसको) प्राप्त होकर जीव लौट कर (संसार में) नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! तुम्हें कहाँ आना है? मैं तुम्हें आज बताता हूँ। किसी विदेशी को मिले और पूछें कि मैं तो अमेरिका कभी गया नहीं। उनसे पूछें कि तुम्हारा देश कैसा है? वह कैसा दिखता है? वहाँ कैसी बातें होती हैं? भगवान ने कहा- तुम्हें तो याद नहीं है कि तुम मेरे धाम से निकले हो और वह कैसा है? मैं तुम्हें आज बताता हूँ।

न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम॥15.6॥

जो मेरा लोक है, उसे सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। तुम इस पृथ्वी पर रहते हो, यह बिना सूर्य के अधूरी है। सूर्य के बिना तुम्हारा काम नहीं चलेगा। तो क्या वहाँ पर चन्द्रमा है? भगवान ने कहा वहाँ पर चन्द्रमा भी नहीं है।

न सूर्य: न शशाङ्क:

मेरे धाम को न सूर्य की आवश्यकता है, न चन्द्रमा की आवश्यकता है। फिर हमें लगता है कि वहाँ पर कोई अग्नि जैसा प्रकट होगा। उस कारण से वहाँ प्रकाश हो जाता होगा? भगवान कहते हैं- वह भी नहीं?

न पावक:

वहाँ पर अग्नि की भी आवश्यकता नहीं है। तो फिर वह कैसे प्रकाशित होता है? भगवान कहते हैं- अर्जुन! जो मेरा धाम है, वह स्वयं से ही प्रकाशित है। उसके प्रकाश से ही यह सूर्य प्रकाशित है। मेरे धाम के प्रकाश से ही चन्द्रमा भी प्रकाशित होता है और इसी से ही अग्नि में भी प्रकाश होता है। इसलिए परमात्मा को किसी ने भी साकार रूप में तो देखा है? निराकार रूप में देखा? कोई शक्ति कहता है! कोई एनर्जी कहता है। **अंग्रेज उसे Devine Light कहते हैं। मुस्लिम में नूर ए इलाही कहते हैं। हम हिन्दू दिव्य ज्योति कहते हैं। क्योंकि यह परमात्मा की सत्ता है, यह स्वयं प्रकाशित होती है।** भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! उस धाम की जो सबसे बड़ी खासियत है-

यद्गत्वा न निवर्तन्ते

वहाँ जाने के बाद वापसी का कोई टिकट नहीं है। **no need to come back**

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनं।

आदि शङ्कराचार्य कहते हैं कि करोड़ों जन्मों से हम बार-बार जन्म लेते हैं और बार-बार मरते हैं। बार - बार माता के गर्भ में उलटे लटकते रहते हैं और हर बार कहते हैं कि अब बुरे कर्म नहीं करेंगे और इन झञ्झटों से हमें मुक्ति चाहिए। फिर संसार में आते हैं फिर कामनाओं में फँस जाते हैं फिर वासनाओं में फँस जाते हैं कि यह तो बहुत अच्छा है। जिन्होंने सत्सङ्ग का अभ्यास अभी आरम्भ किया है, उन्हें लगता है कि मोक्ष की क्या जरूरत है? बढ़िया शरीर मिलता रहे। आज्ञाकारी पत्नी और बच्चे मिलते रहें। हमें तो यह जीवन भी बुरा नहीं लगता है। ऐसा हमें कुछ समय के लिए लग सकता है परन्तु जब हम करोड़ जन्म की यात्रा का विचार करते हैं तो यह बात बिल्कुल अप्रासङ्गिक लगती है। भगवान कहते हैं-

यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम॥ 15:6॥

जानत तुम्हि तुम्हि होई जाहीं।

भगवान कहते हैं हे अर्जुन! वो फिर वापस नहीं आते। यह जो मेरा धाम है, यही परमधाम है।

15.7

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।
मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति।।7।।

इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा (स्वयं) मेरा ही सनातन अंश है; (परन्तु वह) प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है (अपना मान लेता है)।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं - हे अर्जुन! इस देह में, इस शरीर में यह जो जीवात्मा है यह मेरा अंश है और यह सनातन है। दो शब्द है **एक सनातन और एक पुरातन।**

पुरातन मतलब जो बहुत ही पुराना है। लाखों करोड़ों या बहुत ही साल पुराना है। इसका पता लगाना भी बहुत मुश्किल है। इसलिए हम इसे पुराण बोलते हैं। पुरातन से ही पुराण बना है। दूसरा शब्द है **सनातन।** सनातन का अर्थ है यह पुराना तो नहीं है, यह कभी करोड़ों वर्ष पहले हुआ था! ऐसी भी बात नहीं है।

It is since always, it is ever always.

यह हमेशा से ही था और हमेशा रहने वाला है। यह पहली बार नहीं हुआ। जिसने अध्यात्म का चिन्तन नहीं किया हो, उसको यह प्रश्न आता है कि पहले मुर्गी या पहले अण्डा। या पहली बार मनुष्य कैसे बना होगा, पहली बार पृथ्वी कैसे बनी होगी, पहली बार भगवान ने जीवात्मा को कैसे बनाया होगा? पहली बार मेरी आत्मा भगवान से कब अलग हुई होगी? ऐसे प्रश्न स्वाभाविक रूप से हमारे मन में आते हैं तो भगवान कहते हैं यह सब निरर्थक प्रश्न है।

Never happened first time,
There was no first time.

हम लोगों को यह पहली बार और अन्तिम बार की कल्पना इसलिए है कि इस मरणधर्मा शरीर में हैं। यह शरीर जन्मता रहता है और मरता रहता है। और इस शरीर के सारे लक्षण उत्पन्न होते हैं और समाप्त होते हैं। जिसका आरम्भ होता है, उसका अन्त भी होता है और जिसका जन्म हुआ है, उसका मरण भी होता है। यह तो ध्रुव सत्य है। परन्तु हमेशा यह बात हमें समझना मुश्किल हो जाती है, क्योंकि जड़ बुद्धि से इस अनन्तता को समझना असम्भव हो जाता है। भगवान आश्वस्त करते हैं कि तुम चिन्ता मत करो। जो मैं हूँ! वही तुम हो। यदि हम उसी परमात्मा के अंश हैं? तो फिर हम इस चक्कर में क्यों पड़े हैं? भगवान कहते हैं, यह जो पाँच इन्द्रियाँ हैं और इनका जो स्वामी मन है, उनके आकर्षण के कारण यह जीवात्मा इस देह में बसी है। एक छोटी सी स्लाइड से समझेंगे की अनन्त कोटि परमात्मा जो है वह मैं हूँ।

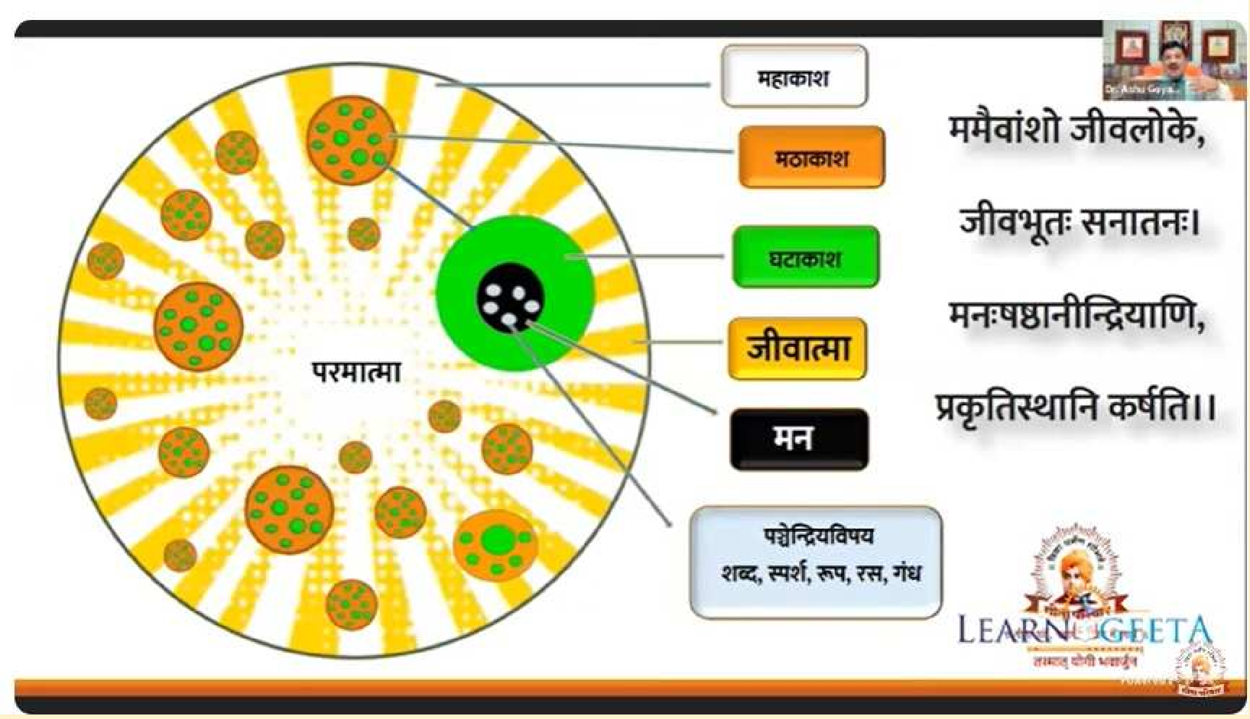

अध्यात्म के उपनिषदों में तीन शब्दों में इसकी व्याख्या है- **महाकाश, मठाकाश और घटाकाश।**

महाकाश वह अनन्त परमात्मा, वह अनन्त सत्ता उसे शक्ति मानिए। आकार, निराकार या ॐ मानिए। कोई स्वरूप मानिए, या प्रकाश, कुछ भी मानिए वही महाकाश है। दूसरा है **मठाकाश।** जैसे हमारे घर के बाहर जो आकाश है, वह आकाश हमारे घर के भीतर का आकाश और इस गिलास के भीतर का आकाश। आप बताइए कि तीनों एक है या अलग है। स्वाभाविक रूप से हम कहेंगे एक है परन्तु हमारे घर के बाहर का जो आकाश है अगर वहाँ का तापमान देखें तो बत्तीस डिग्री है, घर के अन्दर आने पर वह तीस डिग्री रह जाता है और गिलास के अन्दर यदि जल है तो हो सकता है उसका तापमान अट्ठाइस डिग्री हो। आकाश तो एक ही है सब में। उस एक आकाश होने पर भी उसका अस्तित्व अलग-अलग दिखता है। उसके गुण भी अलग होते हैं। इसी प्रकार वह परमात्मा एक ही है परन्तु वह बँट गया। महाकाश से जो मुख्य आकाश है ऐसा नहीं है कि वह टूटकर बँट गया है। मेरे घर के बाहर का और भीतर का आकाश, यह कोई टूटा नहीं है, न ही अलग हुआ है। उसकी सत्ता जरूर अलग हो गई है परन्तु सत्ता अलग होने पर भी वह एक ही है। घड़े के अन्दर के आकाश को, अगर घड़ा फोड़ दें तो वह अलग होता है ऐसा नहीं है वह सब एक समान है। वह परम सत्ता, वो महाकाश जो जब पृथ्वी आदि लोक में दिखती है तो मठाकाश कहलाती है। जब किसी शरीर में प्रवेश करती है तो वह घटाकाश कहलाती है। अब यह तीनों आकाश अलग-अलग दिखते हैं। इनका स्वरूप अलग-अलग दिखता है परन्तु मौलिक तत्त्व एक ही है। इस घटाकाश के अन्दर एक जीवात्मा और मन, इन पाँच इन्द्रियों के द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। इन पाँच विषयों के द्वारा, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ और पाँच चेतन मात्राएँ। इनके उपयोग से यह भ्रमण करती रहती हैं।

हमारे मन में यह प्रश्न आता है कि जब यह शरीर मरता है तो यह आत्मा दूसरे शरीर में कैसे जाती हैं? यदि यह चेतन तत्त्व है तो यह जड़ तत्त्वों को कैसे ग्रहण करती है? भगवान ने दूसरे अध्याय में कहा है कि न कोई मरता है, न मारता है, न सूखता है, न गीला होता है, न चिपकता है, न कुछ करता है, पर यह दूसरे शरीर में कैसे जाता है। आगे भगवान सुन्दर उत्तर देते हैं।

15.8

शरीरं(यँ) यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात्॥15.8॥

जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को (ग्रहण करके ले जाती है), ऐसे ही शरीरादि का स्वामी बना हुआ जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, (वहाँ से) इन (मन सहित इन्द्रियों) को ग्रहण करके फिर जिस (शरीर) को प्राप्त होता है, (उसमें) चला जाता है।

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! जैसे वायु अपने साथ गन्ध को ग्रहण करके ले जाता है! वैसे ही यह जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करता है, उस से मन सहित इन्द्रियों के संस्कारों को ग्रहण करके, फिर दूसरा शरीर जो प्राप्त होता है, उसमें चली जाती है। वायु की एक क्वालिटी है, वायु कुछ भी ग्रहण नहीं करता है। एक वायु सुगन्धित है यह सदा के लिए सुगन्धित नहीं रहता है। एक बार पानी में यदि लाल रंग डाल दिया तो वह पानी हमेशा के लिए लाल हो सकता है। यह हम कह सकते हैं। परन्तु जब वायु पर गुलाल उड़ाया जाये, वह वायु हमेशा लाल नहीं रह सकता। वायु किसी बात को ग्रहण नहीं करता है। जल का गुण है ग्रहण करना। वायु निष्क्रिय रहता है फिर भी उस वायु में हमें सुगन्ध या दुर्गन्ध आती है। वायु से उसका दुर्गन्ध हमारे नासिका तक पहुँचती है। वायु उनसे चिपकता नहीं है। वायु सदा के लिए सुगन्धित या दुर्गन्धित नहीं हो सकता। झोंके से वायु आगे निकल जाता है और सुगन्ध वहीं रह जाती है।

भगवान कहते हैं, जिस प्रकार वायु किसी पदार्थ को ग्रहण नहीं करता है, परन्तु एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। इसी प्रकार यह जीवात्मा चेतन होते हुए भी, जड़ तत्त्व को ग्रहण नहीं कर सकती। फिर भी मैंने जो इस जन्म में पाप किया या पुण्य किया, अच्छे - बुरे काम किये, मेरा अच्छा या बुरा या मेरे पाप - पुण्य। इस जन्म या पिछले जन्मों के भी वह सब आगे निकल जाते हैं।

जब हम एक छोटी पेन ड्राइव, यह 128 जीबी हो या 256 जीबी की हो तो उसमें कितने घण्टे के गाने भर सकते हैं? उसमें लाखों घण्टे की मूवी आ सकती है। यदि मनुष्य ऐसी चिप बना सकता है जो इतनी छोटी हो और उसमें लाखों मूवीज् आ जाएँ तो परमात्मा ने जो चिप बनाई है उसकी सूक्ष्मता और क्षमता को कैसे नाप सकते हैं? इसलिए जो कारण शरीर होता है! करोड़ों जन्मों के स्मृतियों को एक स्थान पर सङ्ग्रहीत करके, आगे निकल जाता है। सुगन्ध और दुर्गन्ध, जैसे हम पाप और पुण्य समझते हैं, हम बदलते रहते हैं और नई-नई देह प्राप्त करते रहते हैं। भगवान पाँच तन्मात्राओं का वर्णन करते हैं।

15.9

श्रोत्रं(ञ्) चक्षुः(स्) स्पर्शनं(ञ्) च, रसनं(ङ्) घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं(वँ), विषयानुपसेवते॥15.9॥

यह (जीवात्मा) मन का आश्रय लेकर ही श्रोत्र और नेत्र तथा त्वचा, रसना और घ्राण –(इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा) विषयों का सेवन करता है।

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! पाँच जो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इनके जो पाँच तत्व हैं। इन्हीं से अनेक अनेक जन्मों से, अनेक शरीरों में, अलग-अलग प्रकार की विषय वासनाएँ, कामनाएँ, आशाएँ पूरी होने की आशा में इस शरीर से दूसरे शरीर में, दूसरे से तीसरे और तीसरे से हजारों में पहुँच जाते हैं। साथ में पूर्व जन्मों के किए हुए कर्म फल भी साथ जाते हैं। अर्जुन, यह जीवात्मा **श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, रसना और घ्राण**, मन को आश्रय करके इन सब के सहारे से इन विषयों का सेवन करती है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के प्रति हमारे उपनिषदकारों ने बताया। सबसे पहले भगवान कहते हैं -

श्रोत्र- यानि कान। सुनने की शक्ति। कोई अपना बायोडाटा बनाता है तो उसमें अपनी हॉबीज् लिखता है। किसी को अच्छा सङ्गीत सुनना। यह सुनने का आकर्षण हम सभी को होता है। किसी को कथा या विवेचन सुनना पसन्द है। किसी को भजन या गजल पसन्द है। हिरण को भगवान ने चौकड़ी भरने की शक्ति दी है। दाएँ बाएँ कूद कर भागने की शक्ति दी है। जो किसी अन्य जीव को नहीं प्राप्त है। चीते को संसार में सबसे तेज दौड़ने की शक्ति दी है। सबसे तेज दौड़ने पर भी चीता, हिरण को उसके विशेष गुण के कारण नहीं पकड़ सकता। चालीस बार यदि कोई चीता कोशिश करता है तो वह एक बार ही हिरण को

पकड़ सकता है। हर बार वह हिरण की शक्ति के कारण उसे मिस कर जाता है। जिस हिरण को संसार में सबसे तेज भागने वाला चीता भी पकड़ नहीं पाता है, उस हिरण को, शिकारी बहुत आसानी से पकड़ लेते हैं। हिरण को सङ्गीत बहुत प्रिय है। भगवान श्री कृष्ण की मुरली बजाते हुए जो फोटो होती है तो उनके साथ हिरण जरूर बैठे होते हैं। यह बात शिकारी को पता होती है। मनुष्य तो सबसे बुद्धिमान प्राणी है। हिरण को पकड़ने वाले शिकारी मुख्य रूप से उसको कस्तूरी नामक द्रव्य के कारण पकड़ते हैं जो बहुत महँगा होता है। उस कस्तूरी को पाने के लालच में शिकारी, हिरण को जो सङ्गीत पसन्द है, उसको बजाते हैं, जैसे ही वह आवाज हिरण के कानों तक पहुँचती है, हिरण उस सङ्गीत में खो जाता है और मगन हो जाता है। हिरण बहुत चौकन्ना प्राणी है परन्तु उसका मन जब सङ्गीत के साथ जुड़ जाता है और वह रस में लग जाता है। शिकारी जैसे ही देखता है कि हिरण तो मस्त है, तो वह धीरे-धीरे उसके पास पहुँचता है और उसके अण्डकोष काटकर कस्तूरी को प्राप्त कर लेता है और हिरण को वहीं मरने के लिए छोड़ जाता है। इतना तेज भागने वाला हिरण भी उस सङ्गीत के आकर्षण में अपने प्राण गवाँ देता है।

दूसरा भगवान कहते हैं- **चक्षु - नेत्र, रूप।** रूप के आकर्षण में पतंगा अपने प्राण गवाँ देता है। बरसात के दिनों मे हमने देखा कि बल्ब पर, ट्यूबलाइट पर, हजारों लाखों पतँगे वहाँ घूम रहे होते हैं। सुबह उस बल्ब के नीचे हजारों मरे हुए मिलते हैं। कई बार हम दीपक जलाते हैं तो उसमें भी वह जलकर भस्म हो जाते हैं। जितनी बार उस शीशे से टकराता है उसके माथे पर चोट लगती है, फिर भी उस रूप का आकर्षण, उसके मन में इतना रहता है कि उसके आकर्षण में वह टकराते टकराते ही अपनी जान गवाँ देता है। रूप के आकर्षण में कि मैं इस रूप को पा जाउँ, वह जब दीपक की ज्वाला के पास पहुँचता है तो उसको ऊष्मा प्रतीत होती है, उसमें जल के भस्म हो जाता है और अपने प्राण गवाँ देता है।

तीसरा भगवान कहते हैं - रसना।

रसना यानी टेस्ट, स्वाद। मछली पकड़ने वालों को देखा। एक छोटी सी डोरी लगाकर आटे की गोली लगाकर, उसे पानी में डाल देते हैं। मछली उस गोली को खाने का प्रयास करती है और उसी में अटक जाती है और वह उसे बाहर खींच लेते हैं। दूसरी मछली भी उसे देखती हैं परन्तु फिर जब आटे की गोली लगाकर पानी में धागा डालता है तो दूसरी भी उसमें अटक जाती है। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवी। सब उसमें गोली के स्वाद के आकर्षण में अपने प्राण दे देती हैं। सभी मछलियाँ सबको देखती है कि दूसरी मर रही है परन्तु स्वाद के आकर्षण में वह अपने प्राण गवाँती चली जाती हैं।

चौथा है स्पर्श - हाथी दुनिया का सबसे ताकतवर प्राणी है। जङ्गल में शेर हाथी से पङ्गा नहीं लेता क्योंकि हाथी से शेर जीत नहीं सकता। हाथी बहुत शक्तिशाली होता है। जैसे सर्कस का महावत हाथी को कहता है, खड़े हो जाओ, तो हाथी खड़ा हो जाता है। बाबू को सलाम करो, तो वह सूण्ड से सलाम करता है। बैठ जाओ, तो हाथी बैठ जाता है।

हाथी की कमजोरी उसका स्पर्श है। उसको हथिनी का स्पर्श बहुत प्रिय है। हाथी को पकड़ने वाले जो महावत हैं, वो हाथी के लिए जब जाल लगाते हैं तो अमावस की रात को लगाते हैं। एकदम अन्धेरा होना चाहिए। अमावस्या की रात्रि में हथनी की आकृति का एक लकड़ी का स्ट्रक्चर खड़ा किया जाता है और 8- 8 - 8 का एक गड्ढा खोद कर उस पर पुआल बिछाई जाती है। उस हथिनी के स्ट्रक्चर पर एक ताजा हथिनी का गोबर लीपा जाता है ताकि उसमें से हथिनी की गन्ध आए और प्ले यन्त्र के द्वारा हथिनी की आवाज को प्ले किया जाता है। हाथी की सुनने की शक्ति बहुत तेज होती है। वह दो किलोमीटर दूर से भी हथिनी की आवाज सुन लेता है और उस दिशा में भागता जाता है कि मैं हथिनी का स्पर्श प्राप्त कर सकूँ। अमावस्या की रात्रि के कारण उसे दूर से हथिनी की आकृति दिखाई देती है थोडा़ पास आने पर उसे हथिनी के गोबर की गन्ध आने लगती है। वह और जोर से भागना शुरू हो जाता है। हथिनी के पास पहुँचने पर उसे पता चलता है कि वह लकड़ी का है परन्तु उसके पहले ही बीच में जो गड्ढा बना होता है वह उसमें गिर जाता है। जैसे ही वह गड्ढे में गिरता है फिर जोर से चिङ्घाड़ता है और गड्ढे से बाहर निकलने का प्रयास करता है, परन्तु वह निकल नहीं पाता। तीन-चार घण्टे में वह अपने शरीर के हर हिस्से को उसे गड्ढे की रगड़ से घायल कर देता है। बहुत सी जगह पर घाव हो जाते हैं और खून बहता है और 4 घण्टे के मशक्कत में सब प्रकार का प्रयास करके वह थक जाता है। उसे समझ आ जाता है कि अब बाहर निकलना बहुत मुश्किल है। लेकिन अभी तो उसके मन में बहुत क्रोध होता है। वह बहुत चिङ्घाड़ता है। तीन दिन तक उस हाथी को महावत दूर से देखता रहता है और उसके बारे में कोई बात नहीं करता। तीन दिन में वह भूखा भी होता है, प्यासा भी होता है और चोटिल भी होता है। थक भी गया है। तीसरे दिन महावत उसके पास केले और रोटी लेकर आता है। पहले तो हाथी गुस्से में चिङ्घाड़ता है। महावत उसकी और केले और

रोटी फेंक कर चला जाता है। हाथी तीन दिन का भूखा होता है वह सब बड़े चाव से खाता है। चौथे दिन महावत फिर आता है। आज वह ज्यादा रोटी लेकर आता है और उसे देता है। जब हाथी को दो दिन रोटी मिलती है तो पाँचवें दिन वह महावत का इन्तजार करता है। पाँचवें दिन महावत उसे रोटी और केला सीधा नहीं देता है। पहले एक अँकुश दिखाता है। अँकुश एक विशेष प्रकार की छड़ी होती है उससे वह हाथी को सारे कमाण्ड देता है। हाथी को तो भूख लगी है और महावत के अलावा और कोई दूसरा नहीं दिखता। एक घण्टे में उसे समझ आ जाता है कि जब महावत छड़ी घूमाता है, तब हाथी घूमता है तो महावत एक रोटी देता है। छड़ी को दूसरी तरफ घूमाता है और हाथी भी दूसरी तरफ घूमता है तो उसे दूसरी रोटी मिलती है। एक घण्टे में हाथी उस छड़ी के इशारे को समझ जाता है और लगभग छः घण्टे तक उसकी ट्रेनिंग देता है और सारी रोटियाँ खिला देता है। अगले दिन जब महावत आता है तो हाथी अँकुश की तरफ देखता है कि जब वह अंकुश घूमेगी तो उसे रोटी मिलेगी। अगले छठे दिन तक वह उसे बैठना, उठना सब सिखा देता है। सातवें दिन महावत जैसा बोलता है, वह हाथी वैसे ही नाचना शुरू कर देता है क्योंकि उसे पता है कि जब करूँगा तो मुझे महावत से रोटी मिलेगी। अब महावत को जब पूरा दिखता है कि अब यह अँकुश से डरता है और उसके इशारे भी समझता है तो सातवें और आठवें दिन जब महावत को यकीन हो जाता है कि अब यह पूरा काबू में आ गया है तो वह एक पटरा गड्ढे में डालता है उस हाथी के गले में फँदा डालता है और उसे पकड़कर खींचकर दूसरे हाथियों की सहायता से बाहर निकाल लेता एल। अब यह हाथी जो सात दिन पहले तक जङ्गल का राजा था। अगला पूरा जीवन उस महावत के अँकुश पर घूमते हुए निकाल देता है। हाथी उस स्पर्श की लालसा में अब उस अँकुश के द्वारा महावत की गुलामी करने लगता है।

अन्तिम भगवान कहते हैं - **घ्राणमेव** च। **घ्राण यानि नासिका, सुगन्ध, दुर्गन्ध।** गन्ध का आकर्षण। भ्रमर का नाम सुना है। इस भँवरे को भगवान ने इतनी ताकत दी है कि आगे के दो दाँत से कितना भी कठोर पेड़ हो, उसकी लकड़ी में सुराख करके घर बनाकर रहता है। इस भ्रमर को पुष्प का पराग बहुत प्रिय होता है। जहाँ कमल के फूल खिलते हैं, वहाँ के भ्रमर को और कोई फूल का पराग अच्छा नहीं लगता। उसे तो बस कमल के फूल का पराग ही अच्छा लगता है। कमल की विशेषता यह होती है कि वह सूर्य की रोशनी के साथ खुलता है और सूर्यास्त के साथ वह बन्द हो जाता है। जब सूर्य उगा और फूल खिला तो भँवरा उस पर बैठ जाता है और पूरे दिन उसका आनन्द लेता है। शाम को जब सूर्यास्त होने पर, जब कमल की पत्तियाँ बन्द हो रही हैं तो वह निकल सकता है परन्तु वह पराग के आकर्षण के कारण बाहर नहीं निकलता। पत्तियाँ बन्द हो जाती हैं, उससे भी खैर कोई फर्क नहीं पड़ता है जिससे वह लकड़ी में छेद कर सकता है तो कमल की पङ्खुड़ियाँ तो बहुत नाजुक होती हैं। वह उसमें छेद करके निकल सकता है परन्तु नहीं निकल पाता। इन्हीं कमल की पङ्खुड़ियों में बन्द रहकर या घुटकर अपने प्राण गवाँ देता है या रात को हाथियों का झुण्ड निकलता है और कमल को कुचलते हुए आगे चला जाता है। इस प्रकार भ्रमर गन्ध के आकर्षण में अपने प्राणों को त्याग देता है।

कौन सा जीव किस इन्द्रिय के आकर्षण के कारण अपने प्राणों को गवाँता है? कल्पना तो मनुष्य की कीजिए। जिसके अन्दर यह पाँचों आकर्षण विद्यमान हैं। हाथी को स्पर्श चाहिए। भ्रमर को सुगन्ध चाहिए।। मछली को स्वाद चाहिए हिरण को सङ्गीत चाहिए। हम लोगों को तो हर चीज चाहिए। अच्छा भोजन, सङ्गीत, कपड़े, सुगन्ध हर चीज चाहिए तो उसका हाल कैसा होगा? वह पाँचो इन्द्रियों के आकर्षण के कारण ही करोड़ों जन्मों की यात्रा कैसे करता है?

15.10

उत्क्रामन्तं(म्) स्थितं(वँ) वापि, भुञ्जानं(वँ) वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥15.10॥

शरीर को छोड़कर जाते हुए या दूसरे शरीर में स्थित हुए अथवा विषयों को भोगते हुए भी गुणों से युक्त (जीवात्मा के स्वरूप) को मूढ़ मनुष्य नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले (ज्ञानी मनुष्य ही) जानते हैं

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! इतना सब सुनने के बाद भी, इस शरीर को छोड़कर जाते हुए या शरीर में स्थित हुए या विषयों को भोगते हुए, इन तीनों गुणों से युक्त हुए (**सत, रज, तम**) को अज्ञानीजन नहीं जानते। केवल विवेकशील ज्ञान रूपी नेत्रों वाले ज्ञानी ही जान सकते हैं। हम इसके बारे में कितनी ही बातें सुन लें। अज्ञानी पूरा समय उन इन्द्रियों के आकर्षण में फँसा रहता है। जो तत्त्व ज्ञानी महात्मा हैं, वही उसको जानते हैं। जब तक कोई तत्त्व ज्ञानी महात्मा, गुरु हमें मिलते नहीं है। तब

तक हमारे ज्ञान के नेत्रों को खोलने का कोई उपाय नहीं होता। कितना भी सुनने पर, कितना भी पढ़ने पर, हम सुनते भी, पढ़ते भी रहते हैं और बोलते भी रहते हैं, लेकिन करते कुछ नहीं हैं। भगवान एक बहुत महत्वपूर्ण बात कहते हैं- जब लोग कहते हैं कि मैं तो इतने घण्टे ध्यान करता हूँ, जप भी करता हूँ, पूजा भी करता हूँ, गीता भी पढ़ता हूँ, मैं गीताव्रती हो गया, गीता पाठक हो गया, मैं समाज सेवा भी करता हूँ। भगवान कहते हैं यह यथेष्ठ नहीं है।

15.11

यतन्तो योगिनश्चैनं(म्), पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो,नैनं(म्) पश्यन्त्यचेतसः।।11।।

यत्न करने वाले योगी लोग अपने आप में स्थित इस परमात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं। परन्तु जिन्होंने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, (ऐसे) अविवेकी मनुष्य यत्न करने पर भी इस तत्त्व का अनुभव नहीं करते।

विवेचन - भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! यत्न करने पर वाले योगीजन अपने हृदय में आत्म तत्त्व को जानते हैं, किन्तु जिन्होंने अपने अन्तःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन यत्न करने पर भी सार्थक नहीं हो सकते। विवेचन के बाद कुछ लोग प्रश्न करते हैं हमारे पिता, ससुर, बेटा आदि इतने घण्टे पूजा करते हैं, इतना जप, इतना ध्यान करते हैं, लेकिन एक नम्बर के झूठे हैं। भाई पर कोर्ट केस करते हैं, दूसरे की जमीन हड़प लेते हैं, किसी का पैसा खाते हैं और किसी को कटु वचन कहते हैं। इस पूजा का कोई फायदा तो नहीं? भगवान कहते हैं यह बात सही है। केवल यह करने से बात पूरी नहीं बनेगी। हमें इतना तो करना ही पड़ेगा। पूजा पाठ तब तक जो श्रद्धा, साधना की जो पद्धति है, वह तो करना ही पड़ेगा। लेकिन अन्तःकरण की शुद्धि का प्रयास नहीं किया, तो सब व्यर्थ है। मैं झूठ बोल रहा हूँ इस बारे में मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं पूजा करता हूँ तो कितने भी झूठ बोलूँ? मैं कितना भी गलत काम करता रहूँगा परन्तु अच्छे काम करके उसको बैलेंस करता रहूँगा। ऐसा लोगों को लगता है।

भगवान कहते हैं ऐसा नहीं होगा। इस हृदय में कपट रखोगे, झूठ रखोगे, वासनाओं को रखोगे, कामनाओं को रखोगे तो फिर तुम सोचते हो कि फिर ऐसे में तुम्हारा भगवान में ध्यान लगेगा? यह सम्भव नहीं है। इसलिए अन्तःकरण को शुद्ध करने का प्रयास कीजिए। मैं जाग्रत होकर, अपने जीवन में अपने हृदय को स्वच्छ करने का प्रयास करता रहूँगा। यदि मैं झूठ बोलूँगा, बेईमानी करूँगा तो क्या मुझे भगवान मिल जाएँगे? कोई सम्भावना नहीं है।

भगवान कहते हैं मुझे प्राप्त करना है तो अपने अन्तःकरण की शुद्धि करनी पड़ेगी। शुद्ध अन्तःकरण के बिना ज्ञान अच्छा तो लगता है, सुनकर बोलना भी आ जाता है परन्तु भीतर कुछ नहीं जाता। यहाँ बोलने वाले तो बहुत हैं। परन्तु अन्तःकरण की शुद्धि वाले लोग बहुत कम हैं।

भगवान अगले चार श्लोकों में बहुत अच्छा विज्ञान बताते हैं। बहुत सुन्दर बोलते हैं। वह इन श्लोकों में अपनी पूरी सत्ता का वर्णन अलग अलग माध्यम से हमें दिखाते हैं। भगवान अपने तेज की महिमा का वर्णन करते हैं।

15.12

यदादित्यगतं(न्) तेजो, जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ,तत्तेजो विद्धि मामकम्।।12।।

सूर्य को प्राप्त हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है (और) जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! जो तेज सूर्य में है, वह जगत को प्रकाशित करता है और जो तेज चन्द्रमा में है और जो तेज अग्नि में है उसको तू मेरा ही जान। अग्नि में दाहक शक्ति और प्रकाशक शक्ति होती है। इसमें दो शक्तियाँ होती हैं। अग्नि से हमें रोशनी और ऊष्मा दोनों मिलते हैं। चन्द्रमा में केवल प्रकाश शक्ति है, दाहक शक्ति नहीं है। सूर्य के प्रकाश में दाहकता भी

है और प्रकाश भी है। भगवान कहते हैं यह दोनों ही मेरे तेज से हैं। यह दोनों ही मेरा तेज है।

15.13

गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः(स्) सर्वाः(स्), सोमो भूत्वा रसात्मकः।।13।।

मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ और (मैं ही) रस स्वरूप चन्द्रमा होकर समस्त ओषधियों (वनस्पतियों) को पुष्ट करता हूँ।

विवेचन- भगवान कहते हैं कि मैं ही इस पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूत प्राणियों को धारण करता हूँ। और मैं ही रस स्वरूप यथार्थ में चन्द्रमा होकर सब औषधियों का पोषण करता हूँ। औषधियों को पुष्ट करता हूँ। यदि चन्द्रमा की रोशनी न मिले तो फसल नहीं पक सकती। उसे सूर्य का प्रकाश भी चाहिए। भगवान कहते हैं कि वह शीतलता भी मेरी शक्ति से है। उस बीज में जो उच्च फल होता है वह किसकी शक्ति से होता है? सोचो! एक ही बीज एक वृक्ष को उत्पन्न करता है। उसकी तने, शाखाएँ और पत्तियों को, फल को, फूल को उत्पन्न करता है और उसमें भी हजारों बीजों को उत्पन्न कर देता है जिनमें हजारों वृक्षों को उत्पन्न करने की ताकत रहती है। भगवान कहते हैं यह मेरे ही तेज से होता है।

15.14

अहं(वँ) वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां(न्) देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः(फ्), पचाम्यन्नं(ञ्) चतुर्विधम्॥15.14॥

प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! सभी प्राणियों के शरीर में भी मैं ही रहता हूँ। मैं सभी प्राणियों के शरीर में स्थित रहने वाला प्राण और अपान सहित, अग्नि रूप होकर काम करके अन्नों को पचाता हूँ। भगवान ने शक्ति का अवतरण पहले पृथ्वी पर किया। अब इस शरीर में कर लिया। भगवान कहते हैं, यह जो शरीर है, यह ऐसे नहीं चलता है, इसे मैं नियन्त्रित करता हूँ। भगवान ने यहाँ तीन प्रकार की अग्नि बताई है।

यहाँ एक प्रकार तो वैश्वनर अग्नि।
बड़वाग्नि।
जठराग्नि।
दावाग्नि।
यहाँ जो वैश्व अग्नि है वह जठराग्नि है।

भगवान कहते हैं कि जिस अग्नि को प्रकट होते हुए देखा है, वह दावाग्नि है। दावाग्नि जिससे सागर में ज्वार आता है।

अन्न चार प्रकार के होते हैं। भक्ष्य, पेय, लेय, चौष्य । यह चार प्रकार के अन्न है।

भक्ष्य यानि चबाकर खाने वाला अन्न।
पेय यानि पिया जाने वाला अन्न।
लेय यानि चाटा जाने वाला अन्न।
चौष्य यानि चूसने वाला अन्न।

हम चार प्रकार से भोजन करते हैं। चबाकर, पीकर, चाटकर और चूसकर। यह चार प्रकार के भोजन है। प्राण भी पाँच प्रकार के होते हैं।

प्राण, अपान, उदान, सामान और ज्ञान।

यह पाँचो प्राण शरीर को व्यवस्थित करते हैं। हमें कोई रस्सी पर उल्टा लटका दें और रोटी मुँह में डाल दें तो रोटी बाहर नहीं गिर जाएगी तो भी वह अपने आप फूड पाइप से होकर हमारी छोटी आँत और बड़ी आँत में पहुँच जाएगी। यदि हम दाएँ या बाएँ लेट कर खाते हैं तो वह दाएँ बाएँ नहीं जाती है कि वह रोटी खाई तो कान में गई ऐसा नहीं होता है। मैं कैसे भी करके अन्न ग्रहण करूँ, अन्दर की सारी क्रियाएँ भगवान ही कण्ट्रोल कर रहे हैं? इस गुरुत्वाकर्षण के विपरीत जाकर, इस शरीर की सारी क्रियाओं का सम्पादन कैसे होता है? यह इन पाँच प्राणों से होता है। जैसे पैरों में रक्त जाता है फिर वापस ऊपर चढ़ता है, फिर हृदय पर पहुँचकर और किडनी से फिल्टर होकर वापस पहुँच जाता है। यह कौन करता है? यह सब पाँचो तत्त्व ही करते हैं, पाँचो प्राण करते हैं।

भगवान कहते हैं सूर्य की शक्ति से वनस्पति बनती है। रात्रि में चन्द्रमा की शीतलता ओस के रूप में प्रणीत होकर उसको पुष्ट करती हैं, फिर वह औषधि रूप से अन्न के द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश करती है। यहाँ प्रणापान की शक्ति है जो गुरुत्वाकर्षण के नियमों का उल्लंघन करते हुए जठराग्नि तक ले जाती है। अब शरीर में जठराग्नि के द्वारा अन्न का पाचन होता है। आप सुबह से शाम तक केवल आइसक्रीम खाएँ - बीस डिग्री पर। परन्तु जब भी आप मूत्र त्याग करेंगे वह गर्म ही होगा। वह ठण्डा नहीं होगा। मैंने सुबह से शाम तक केवल ठण्डा ही खाया, परन्तु जब पचाया जाएगा वह अग्नि से ही पचाया जाएगा। वह जठराग्नि से ही होगा।

भोजन से रक्त, रक्त से रस और रस से मज्जा। मज्जा से अस्थि। अस्थि से वीर्य, वीर्य से ओज, ओज से तेज होता है। यह सब कार्य भगवान की शक्ति से होता है। परम शक्ति उस महाकाश से होती हुई मठाकाश से होकर इस घट में निवास करती है।

15.15

सर्वस्य चाहं(म्) हृदि सन्निविष्टो, मत्तः(स्) स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं(ञ्) च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।15।।

मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे (ही) स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं (ही हूँ)।

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी के रूप में स्थित हूँ। अतः मुझ से ही स्मृति ज्ञान और अपोहन मिलता है। स्मृति पुराना सीखा हुआ को कहते हैं।

I know some thing, and I remember it.

ज्ञान यानि नया सीखना। जिस प्रकार हमने इसमें कुछ नई बातें जान ली। यह ज्ञान है और तीसरा हैं अपोहन। पोहन का अर्थ होता है संशय यानी doubt. मैं यह करूँ या वह करूँ, यह ठीक रहेगा या वह ठीक रहेगा, यह सही है या यह सही है, यही doubts है।

अपोहन - बुद्धि की विशुद्धता।

मुझे पता है कि क्या ठीक है। इसलिए हमारे यहाँ पुस्तक के ज्ञान से भी अनुभवी ज्ञान मिल जाता है। बड़े बूढ़ों से पूछो। बड़े-बड़े साइण्टिस्ट, बड़े-बड़े विद्वान। किसी सन्त महापुरुष के वहाँ पर जाकर उनको प्रणाम करके प्रश्न पूछते हैं। क्योंकि उनको पता है कि उनका पढ़ा हुआ ज्ञान एक तरफ और इस महापुरुष के पास जो प्रज्ञा है, वह हमारे पास नहीं है। यह अपोहन यह भगवान की शक्ति से हमें मिलती है। भगवान कहते हैं- अर्जुन मैं ही वेदों के द्वारा सब ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य हूं। इसको जानने वाला और चलाने वाला भी मैं हूँ।

15.16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः(स्) सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।

इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) – ये दो प्रकार के ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है।

विवेचन- सोलहवें सत्रहवें और अठारहवें श्लोक में भगवान इस अध्याय का सबसे महत्वपूर्ण विषय कहते हैं। जिस कारण इस अध्याय का नामकरण हुआ। जिस कारण इस अध्याय को शास्त्र कहा गया। भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! अब इसको सुनो! इस संसार में नाशवान और अविनाशी दो प्रकार के पुरुष हैं। हमने इनके बहुत सारे नाम सुने हैं। **नाशवान और अविनाशी, क्षेत्र- क्षेत्रज्ञ, क्षर - अक्षर, प्रकति - पुरुष, जड़- चेतन, देह - देही।** यह सारे नाम इन्हीं दो पुरुषों के हैं। भगवान ने कहा कि यह दो प्रकार के पुरुष हैं- इन भूत प्राणियों का शरीर नाशवान है और जीवात्मा अविनाशी है। जो नाशवान है वह जिस क्षण से उत्पन्न होता है, उसी क्षण से मरना शुरू हो जाता है। साढ़े तीन साल में हमारे शरीर के सारे ऊतक, सारी कोशिकायें नई हो जाती हैं। फिर भी ऐसा कौन है, जो सदा एक जैसा रहता है? पाँच साल का था तब भी मुझे मेरे होने की अनुभूति वैसी ही थी, पच्चीस में भी वैसी ही है, पचास में भी वैसी ही है, अस्सी में भी अगर मरने भी लगूँगा तो मेरे होने की अनुभूति ऐसी ही रहेगी। वह जीवात्मा है, वह अक्षर है, वह कभी बड़ा नहीं होता है, कभी बूढ़ा नहीं होता है, कभी मरता भी नहीं है। भगवान कहते हैं यह शरीर नाशवान है और इसके अन्दर जो आत्मा है, चेतनता है, वह अविनाशी है। लेकिन मैं यहाँ पर एक बड़ा रहस्य प्रकट करने वाला हूँ।

15.17

उत्तमः(फ्) पुरुषस्त्वन्यः(फ्), परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।17।।

उत्तम पुरुष तो अन्य (विलक्षण) ही है, जो 'परमात्मा'– इस नाम से कहा गया है। (वही) अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर (सबका) भरण-पोषण करता है।

विवेचन- भगवान कहते हैं कि इन दोनों से भी उत्तम पुरुष कौन हैं? यह बात सत्य है कि वह घटाकाश, मठाकाश, महाकाश एक ही हैं। परन्तु इन तीनों को सम्भालने वाला कौन है? ईश्वर ने हमारा निर्माण किया है, हम ईश्वर का निर्माण नहीं कर सकते। उसने ही हमें बनाया है हम उसके ही अंश हैं लेकिन उनके अंश होने पर भी उससे अलग हैं। समुद्र की बूँद को निकाल कर उसका कोई वैज्ञानिक परीक्षण किया जाए तो जो समुद्र की प्रॉपर्टीज है, वही प्रॉपर्टी उस बूँद की है। उसमें कोई अन्तर नहीं है। उस बूँद को अगर वापस समुद्र में मिला दिया जाए तो वह बूँद नहीं है, वह समुद्र ही हो जाता है। लेकिन जब तक वह बूँद है, तब तक वह समुद्र नहीं है।

भगवान कहते हैं कि उत्तम पुरुष तो अन्य ही है। यह जो नाशवान प्रकृति है, अविनाशी जीवात्मा है, इन दोनों से भी जो उत्तम है वह तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करती है। वह अविनाशी परमेश्वर परमात्मा इस प्रकार का है। **पुरुषोत्तम, प्रकृति और पुरुष।** पुरुषोत्तम से पुरुष हुआ। पुरुष से प्रकृति हुई। पुरुषोत्तम से पुरुष नजदीक है, प्रकृति दूर है। इसलिए हमारे जीवात्मा, हमारा मूल स्वरूप उस परमेश्वर के एकदम नजदीक है।

15.18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहम्, अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः(फ्) पुरुषोत्तमः।।18।।

कारण कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' (नाम से) प्रसिद्ध हूँ।

विवेचन- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! क्योंकि मैं नाशवान, जड़ क्षेत्र से सर्वथातीत हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ।

इसलिए लोक और वेद में मैं पुरुषोत्तम नाम से जाना जाता हूँ।

पुरुषोत्तम - जो पुरुषों में भी उत्तम है इसीलिए इस अध्याय का नाम है **पुरुषोत्तम योग।** भगवान कहते हैं मैंने तुम्हें तुम्हारा स्वरूप बतलाया। मैंने अपना भी स्वरूप बताया और मेरा एड्रेस, मेरी स्पेसिफिकेशन इस अध्याय में पूरी हो गई। क्योंकि इन बीस श्लोकों में मैंने इतनी भारी भरकम बातें कह दी है। इसलिए इसकी बहुत महिमा है।

15.19

यो मामेवमसम्मूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां(म्),सर्वभावेन भारत।।19।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! इस प्रकार जो मोह रहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है।

विवेचन- हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्व से पुरुषोत्तम जान लेता है। वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है। उसको कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।।

15.20

इति गुह्यतमं(म्) शास्त्रम्, इदमुक्तं(म्) मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।।20।।

हे निष्पाप अर्जुन ! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन ! इसको जानकर (मनुष्य) ज्ञानवान् (ज्ञात-ज्ञातव्य) (तथा प्राप्त-प्राप्तव्य) और कृतकृत्य हो जाता है

विवेचन- भगवान कहते हैं जो मुझ पुरुषोत्तम को जान लेता है, वही मेरा उत्तम भजन कर सकता है। इसलिए हे अर्जुन! इसी प्रकार इस रस युक्त-

गुह्य, गुह्यतर, गुह्यतम।
secret, Deep secrets, most secret

अभी most secret जो होता है। सरकारी फाइलों में क्लासीफाइड। क्लासिफाइड का मतलब किसी को नहीं पता, ऐसी बात नहीं है। जो उसको जानने का अधिकारी है वह उस फाइल को देख सकता है। जिसको कोई अनुमति है, वही इस फाइल को खोल सकता है। जिसको कोई अनुमति नहीं है वह इस फाइल को नहीं देख सकता। भगवान कहते हैं यह गुह्यतम ज्ञान है जो मैने तुम्हे दिया। जब हमने यह ज्ञान सुन लिया तो इसका मतलब है, हम श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा चुने हुए हैं। किसी जन्म में, भगवान की ऐसी कृपा घटी है, जो यह गुह्यतम ज्ञान को सुनने की क्षमता हमें दी। इस प्रकार यह अति रहस्य पूर्ण गोपनीय शास्त्र है। भगवान इस अध्याय को शास्त्र की उपमा देते हैं। और इसलिए इस एक अध्याय के पाठ का चलन सर्वत्र हो गया। समय यदि कम है तो 15वें अध्याय का पाठ करना चाहिए। भोजन करने से पहले 15वें अध्याय का पाठ कर लो। शादी विवाह के अवसर पर इस अध्याय का पाठ कर लो। कोई मरने वाला है तो उसे 15वें अध्याय सुना दो। जो यदि कोई मर गया तो उसके लिए भी इस अध्याय का पाठ कर लो। एग्जाम में जाना है तो 15वें अध्याय का पाठ करके जाओ। कोई भी अवसर पर हम इस अध्याय का पाठ कर सकते हैं क्योंकि भगवान ने इस अध्याय को शास्त्र की उपाधि दी है। इसको जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृत कृतार्थ हो जाता है। जो इसको जान लेता है वह मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। भगवान इस अध्याय की महिमा कहते हैं **एक भजन से -**

मन यह दो दिन का मेला रहेगा,

कायम न जग का झमेला रहेगा।

कितनी भी बड़ी गाड़ी लगा लो, लेकिन जाना तो कंधो पर ही। शरीर को अन्तिम समय में यदि कोई भी घनिष्ठ मित्र भी है दो बून्द गड्गाजल मुख में डाल देता है। अर्धाङ्गिनी भी अपने को बस चौराहे तक छोड़कर जाती है। उसके बाद नहीं जाती। श्मशान तक आने का भी उसको अवसर नहीं मिलता है। परिवार के लोग हैं, कुटुम्ब, साथी वह शमशान तक चले जाते हैं बेटा भी एक अग्नि लगाने तक तो पास में खड़ा रहेगा पर उसके बाद वह भी दूर चला जाएगा। इसके बाद जो साथ जाएगा वह जो भजन किया होगा वही साथ जाएगा।

अरे मन यह दो दिन का मेला रहेगा,
कायम न जग का झमेला रहेगा।
कायम न जग का झमेला रहेगा।
ॐ श्रीकृष्णार्पण मस्तु

:: प्रश्नोत्तर ::

प्रश्नकर्ता- आशीष सिन्हा भैया

प्रश्न- हम भगवान के अंश हैं, तो हमारे गुण भगवान से अलग क्यों हैं?

उत्तर- प्रणियों में जो भी सत्व रज तम गुण हैं, उन सबका प्राकट्य भगवान की शक्ति से ही हुआ है। हम सूर्य के प्रकाश में खड़े हो जाएँ तो परछाई बनती है। बिना सूर्य के प्रकाश परछाई नहीं बन सकती। किन्तु वह परछाई सूर्य में तो नहीं है। न परछाई सूर्य में है, न ही सूर्य परछाई में है, किन्तु उस परछाई का उद्भव सूर्य के कारण ही हुआ है। इसी प्रकार जो भी नकारात्मक भाव हमें दिखता है, वह भगवान की शक्ति के बिना सम्भव नहीं है, किन्तु न तो उस नकारात्मकता में भगवान हैं और न ही भगवान में वह नकारात्मकता है। लेकिन उसकी उत्पत्ति भगवान की शक्ति के कारण हुई। जैसे परछाई की उत्पत्ति सूर्य के प्रकाश कारण हुई, वैसे ही इस शरीर का निर्माण भगवान के तत्त्व से हुआ है।

प्रश्नकर्ता- श्रीकान्त धर्माधिकारी भैया

प्रश्न- गृह प्रवेश पर पन्द्रहवें अध्याय का पठन क्यों करते हैं?

उत्तर- श्रीभगवान ने पन्द्रहवें अध्याय को शास्त्र की उपमा दी है। कम समय हो तो केवल पन्द्रहवें अध्याय का पठन व श्रवण करना शास्त्र पाठ हो गया। भगवान ने कहा है -

तस्मात्छास्त्र प्रमाणं ते

मृत्यु होने पर उसी क्षण तो नया शरीर नहीं मिलता है। दस दिन तक बिना शरीर रहे यह आवश्यक नहीं है, पर दस दिन तक रह सकती है। इसलिए दस दिन उसे गरुड़ पुराण सुनावें या श्रीमद्भगवद्गीता सुनावें ऐसी मान्यता है।

प्रश्नकर्ता- पद्मप्रिया दीदी

प्रश्न- तेलगु में विवेचन

उत्तर- क्षेत्रीय भाषाओं में विवेचन सत्र आयोजित करने के प्रयास चल रहे हैं। अभी समय लगेगा।

प्रश्नकर्ता- महालक्ष्मी पाण्डे दीदी

प्रश्न- मन और इन्द्रियाँ वही रहती हैं, या अगले जन्म में बदलती हैं?

उत्तर- जड़ शरीर तो मृत्यु के बाद नष्ट हो जाता है। मन और इन्द्रियाँ हमारी पसन्द नापसन्द को सूक्ष्म शरीर के साथ अगले जन्म में ले जाती हैं। इस जन्म की दुष्टता या सौम्यता के कुछ अंश साथ में जाते हैं। जैसे छोटे बालक शुरू से ही दुष्ट या सौम्य है, तो यह पूर्व जन्म का प्रभाव है।

प्रश्नकर्ता- अनिल गुप्ता भैया

प्रश्न- अपेक्षा करने से दुःख होता है, तो बचें कैसे?

उत्तर- भूलना स्वाभाविक है। याद हमें करना पड़ता है। याद आता नहीं है, हम प्रयासपूर्वक याद करते हैं, कि किसने हमारे साथ क्या बुरा किया? हमारा कोई प्रिय गलत करता है, तो हम जानबूझकर उसकी वह गलती अनदेखी कर देते हैं। भगवान ने हमें विस्मृति की शक्ति दी है। कटु अनुभव हम प्रयत्न पूर्वक याद न करें तो स्वत: ही विस्मृत हो जाएँगी। दूसरे के अवगुणों को बार-बार याद नहीं करना है। दूरबीन की दिशा बदल दें तो बड़ी चीज भी छोटी हो जाती है। दूसरे के दोषों को छोटा करके देखना है। यह दूसरे पर उपकार नहीं, अपितु स्वयं की शान्ति के लिए आवश्यक है।

प्रश्नकर्ता- नरेश भैया

प्रश्न- अन्त:करण की शुद्धता क्या है?

उत्तर- हमारा एक शरीर जो दिखता है, यह भौतिक शरीर है। सूक्ष्म शरीर जिसे हम अन्तःकरण कहते हैं। यह चार बातों से घिरा हुआ है। मन बुद्धि अहङ्कार और जौ सङ्कल्प विकल्प करता है, वो मन कहलाता है। जब यह निर्णय करता है, तो बुद्धि कहलाता है। जब यह धारणा करता है, तो चित्त हो जाता है। जब यह अनुभूति करता है, तो अहङ्कार हो जाता है। यह एक ही है, किन्तु चारों अलग-अलग स्थितियाँ हैं। अच्छे बुरे विचार मन में ही आते हैं। इसलिए अन्तःकरण में तमस् को जितना घटा सकें, घटाएँ। सत्त्व को जितना बढ़ा सकें, बढ़ाएँ। चौदहवें अध्याय में भगवान ने कहा है - रजोगुण व तमोगुण को दबाकर सतोगुण बढ़ता है। अपने क्रियाकलापों में हम दैनिक कर्म सात्त्विक भाव से करते जाएँ। वातावरण को जैसे जैसे सात्त्विक बनाते जाएँगे, अन्तःकरण शुद्ध होता चला जाएगा।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्याय:॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'पुरूषोत्तमयोग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||